योग नहीं। इस तथ्य को हम इस रूप में प्रकट कर सकते हैं कि यद्यपि प्रत्येक योग समाधि है पर प्रत्येक समाधि योग नहीं है। कुछ विशिष्ट समाधियाँ ही योग कही जा सकती हैं। ऐसी समाधियाँ (चित्तवृत्तिनिरोध), जो योग कहे जाने की योग्यता रखती हैं, सूत्रकार एवं भाष्यकार के अनुसार केवल दो होती हैं—

१. सम्प्रज्ञातसमाधि।

२. असम्प्रज्ञातसमाधि।

इन समाधियों को 'योग' संज्ञा से विभूषित किया जाता है। इनकी स्थिति के सम्बन्ध में यत्किञ्चित् जानकारी प्राप्त करने के लिये कुछ बातें और जाननी होंगी। पहली ज्ञातव्य बात तो यह है कि ये समाधियाँ चित्त की अनेक वृत्तियों का निरोध करने वाली होती हैं। तात्पर्य यह है कि योग मुख्यतः चित्त का एक विशिष्ट प्रकार का प्रशिक्षण या निग्रह है। शरीर तथा इन्द्रियों का निग्रह उसके अङ्गरूप से भले ही आवश्यक हो, किन्तु वह योग नहीं है। योग की साधना का वास्तविक उपादान चित्त (अन्तःकरण) ही है। सांख्ययोगशास्त्र में चित्त भी सभी अचेतन पदार्थों की भाँति त्रिगुणात्मक माना गया है। इसलिये चित्त की वृत्तियाँ भी सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार की होती हैं। चित्त की क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध—ये ५ भूमियाँ होती हैं। चित्त की क्षिप्त, मूढ और विक्षिप्त भूमियों में हुआ वृत्तिनिरोध स्वल्पकालिक होता है और स्वतः उपस्थित तथा खण्डित होता रहता है। इससे मोक्ष प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं होती। इसलिये इन भूमियों की समाधि, साधना की दृष्टि से सर्वथा निष्फल एवं अनुपयोगी होती है।

सम्प्रज्ञातयोग—

चित्त की एकाग्रभूमि का वृत्तिनिरोध (समाधि) राजस और तामस वृत्तियों का पूर्ण निरोध होता है। इसमें केवल सात्त्विक वृत्ति पूर्णरूप से उदित रहती है। फलतः साधक को सगग्र वस्तुओं का वास्तविक, निर्भ्रान्त एवं युगपद् ज्ञान होता है। इसीलिये इस समाधि को 'सम्प्रज्ञातसमाधि' कहते हैं। 'सम्यक् प्रज्ञायतेऽस्मिन्निति सम्प्रज्ञातः समाधिः।' इसी समाधि के सिद्ध होने से प्रकृति और पुरुष—इन दो अन्तिम तत्त्वों का विविक्तज्ञान भी हो जाता है। यही 'विवेकख्याति' है। तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान होने के कारण इसे तत्त्वज्ञान या सम्यग्ज्ञान भी कहते हैं। यह विवेकख्याति निश्चय ही मोक्षप्रद होती है। इसलिये विवेकख्याति का लाभ कराने वाली इस समाधि को मोक्षप्रदता के कारण 'सम्प्रज्ञातयोग' कहा जाता है। यह प्रथम प्रकार का योग है। सम्प्रज्ञातयोग की सिद्धि चार सोपानों के क्रम से होती है—१. वितर्कानुगत, २. विचारानुगत, ३. आनन्दानुगत और ४. अस्मितानुगत। इस चौथे क्रमिक सोपान में ही पूर्णता आने पर

Scanned with CamScanner

'विवेकख्याति' का उदय होता है। जब क्लेश-कर्मसंस्कारों के क्षीण होने के फलस्वरूप विवेकख्याति सुदृढ़ हो जाती है, किसी प्रकार के भी मिथ्याज्ञान से बाधित नहीं होती और निरन्तर सर्वथा विवेकख्याति होती रहती है, तब उसे 'धर्ममेघसमाधि' की भी संज्ञा दी जाती है। उस स्थिति में योगी जीवित रहते हुए मुक्त रहता है। यही 'जीवन्मुक्ति' है।[1] सारे क्लेश तथा संचित एवं क्रियमाण कर्मसंस्कार और वासनासंस्कार दग्धबीज हो जाते हैं। केवल प्रारब्ध-कर्मसंस्कार ही अवशिष्ट रह जाते हैं और उन्हीं के फलभोग-पर्यन्त योगी को शरीर धारण किये रहना पड़ता है। उनके पूरा होते ही शरीरपात हो जाता है और 'विदेहमुक्ति' का लाभ हो जाता है। द्रष्टा का स्वरूप में अवस्थान हो जाता है।

असम्प्रज्ञातयोग —

अभी तक 'सम्प्रज्ञातयोग' की साधना और उसकी आनुषङ्गिक तथा पार्यन्तिक सिद्धि (कैवल्य) का वर्णन हुआ। एक और योग है, जो 'सम्प्रज्ञात-योग' से भी अधिक उत्कृष्ट है—अब उसका निरूपण किया जा रहा है। 'असम्प्रज्ञातयोग' किसे कहते हैं ? 'उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञातसमाधि' को 'असम्प्र-ज्ञातयोग' कहते हैं। असम्प्रज्ञातसमाधि दो प्रकार की होती है—

१. भवप्रत्यय असम्प्रज्ञातसमाधि।

२. उपायप्रत्यय असम्प्रज्ञातसमाधि।

असम्प्रज्ञातसमाधि का लक्षण क्या है ? 'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-शेषोऽन्यः।'—यो० सू० १।१८ के उत्तरार्द्ध के द्वारा असम्प्रज्ञातसमाधि का लक्षण बताया गया है। ऐसी समाधि जिसमें चित्त की 'सात्त्विकवृत्ति' का भी पूर्ण निरोध हो जाता है। तात्पर्य यह है कि राजस, तामस और सात्त्विक तीनों प्रकार की वृत्तियाँ इस समाधि में पूर्णतः निरुद्ध हो जाती हैं। केवल निरोधसंस्कार ही चित्त में अवशिष्ट रहते हैं। ये संस्कार चित्त के प्रविलय में बाधक नहीं होते और न तो व्युत्थान को ही प्रश्रय देते हैं। ये कैवल्यभागीय होते हैं। इन निरोधात्मक संस्कारों को ही अवशिष्ट रखने वाले पूर्ण वृत्ति-निरोध को 'असम्प्रज्ञातसमाधि' कहते हैं। इस समाधि में किसी भी प्रकार का बुद्धिकृत ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता, न तो इस ज्ञान के संस्कार ही अवशिष्ट बचते हैं। इसीलिये 'असम्प्रज्ञात' नाम की अर्थवत्ता भी है।

विदेहों और प्रकृतिलीनों को तत्तद्रूप में पहुँचते ही अर्थात् वैसा देवत्व प्राप्त होते ही सकलज्ञानहीन संस्कारमात्रावशिष्ट स्थिति स्वतः प्राप्त हो जाती है। वे जब तक पूर्वकर्मानुसार उन-उन योनियों में बने रहते हैं, तब तक निरन्तर उनके चित्त की वैसी ही संस्कारशेषावस्था बनी रहती है। 'असम्प्रज्ञातसमाधि'

Scanned with CamScanner

का लक्षण घटित होने के कारण उनकी यह स्थिति 'असम्प्रज्ञातसमाधि' कही जाती है। उनकी इस समाध्यवस्था को 'भवप्रत्यय' इसलिये कहते हैं कि 'भवः जन्म तत्तद्देवत्वप्राप्तिः, एव प्रत्ययः कारणं य तादृशः समाधिः भवप्रत्ययः असम्प्रज्ञातसमाधिः।'

किन्तु यहीं पर समझ लेना चाहिये कि यह समाधि विवेकख्यातिपूर्विका समाधि नहीं है। इसलिये इस प्रकार की स माधि की पूर्वावस्था में पुरुषतत्त्व का साक्षात्कार न होने के कारण ज्ञान का अ ाव ही था। अतः 'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'—इस वैदिक सिद्धान्त के अनुसार 'व्यक्ताव्यक्तविज्ञान' के अभाव में इस समाधि से कैवल्य की सिद्धि असम्भव होती है। योगभाष्यकार ने कहा भी है—'तथा प्रकृतिलयाः साधिकारे चेतसि प्रकृतिलीने कैवल्यपदमिवानुभवन्ति, यावन्न पुनरावर्तते संस्कारवशाच्चित्तमिति।'—यो० सू० १।१९ का भाष्य। कैवल्यप्रदता से रहित होने के कारण यह असम्प्रज्ञातसमाधि 'योग' नहीं कही जा सकती।[1]

मोक्षप्रद असम्प्रज्ञातसमाधि दूसरी वाली है, जिसे 'उपाय-प्रत्यय असम्प्रज्ञात-समाधि' कहते हैं। इसे 'असम्प्रज्ञातयोग' कहा जाता है। यह योग किनको प्राप्त होता है? किन उपायों से प्राप्त होता है? कब प्राप्त होता है? इसकी उपयोगिता क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में क्रमशः यह है कि यह योग सम्प्रज्ञात-योग को पूर्णतया सिद्ध करने के फलस्वरूप निर्विप्लव विवेकख्याति का लाभ कर चुकने वाले और उसके आगे भी योगसाधना में रत रहने वाले योगियों को प्राप्त होता है। शङ्का होती है कि कैवल्यप्रद निर्विप्लव विवेकख्याति की प्राप्ति के बाद कौन-सी साधना शेष बचती है, जिसको असम्प्रज्ञातयोग के साधक लोग करते हैं? इसका समाधान यह है कि विवेकख्याति के समय साधक, पुरुष और बुद्धि दोनों की वास्तविकता जान लेता है। फलतः पुरुष के स्वरूप की अलौकिक शुद्धि, निश्चलता एवं चिन्मात्रता का दर्शन कर चुकने

Scanned with CamScanner

वाला साधक विवेकख्यातिकालिक अत्यन्त सात्त्विक बुद्धि को भी परिणामशीलता, चञ्चलता और उधार ली गयी चेतनता—इत्यादि त्रुटियों से युक्त जानकर उसके प्रति विरक्त होता है। यह वैराग्य ऐहिक और आमुष्मिक विषयों के प्रति होने वाले वैराग्य से बहुत ही उत्कृष्ट होता है। क्योंकि यह शुद्धतम बुद्धि के प्रति होता है, इसीलिये इसको 'परवैराग्य' कहते हैं। इस परवैराग्य के अभ्यास से असम्प्रज्ञातयोग की सिद्धि होती है। इस समाधि में न कोई ध्येय आलम्बन होता है और न किसी प्रकार का बौद्धिक ज्ञान।[1]

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि 'सम्प्रज्ञातयोग' सिद्ध होने पर ही 'असम्प्रज्ञातयोग' सिद्ध हो सकता है। असम्प्रज्ञात की सिद्धि विवेकख्याति के प्रति होने वाले परवैराग्य के अभ्यास से ही होती है।[2] इसीलिये पतञ्जलि असम्प्रज्ञात की सिद्धि तक पहुँचने के लिये उपयोगी सारी अवस्थाओं को एक ही सूत्र में इस प्रकार सङ्कलित करते हैं—'श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्' (यो० सू० १।२०)। श्रद्धा के अन्तर्गत वैराग्य और योग के पाँचों अङ्गों का अभ्यास संगृहीत हो जाता है। वीर्य और स्मृति के अन्तर्गत क्रमशः धारणा और ध्यान का ग्रहण हो जाता है। समाधि के अन्तर्गत आठवाँ अङ्ग 'समाधि' और 'सम्प्रज्ञातसमाधि' आ जाते हैं। प्रज्ञा, विवेकख्याति और विवेकख्याति के उत्तरवर्ती परवैराग्य—दोनों का बोध कराती है, क्योंकि परवैराग्य तो ज्ञान का आनन्त्य या स्वाभाविक प्रतिफल अर्थात् प्रसादमात्र बताया गया है—

'तद् द्वयं वैराग्यं, तत्र यदुत्तरं तज्ज्ञानप्रसादमात्रं ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्।'—यो० सू० १।१६ का भाष्य।

अब इस योग के सम्बन्ध में एक ही शङ्का शेष रह गयी। वह यह कि जब 'निर्विप्लवा विवेकख्याति' को ही मोक्षप्रद माना गया है तो वह तो सम्प्रज्ञातयोग से ही सिद्ध हो जाती है। फिर 'असम्प्रज्ञातयोग' की क्या आवश्यकता और क्या उपयोगिता है? इस शङ्का का समाधान यह है कि विवेकख्याति के सुदृढ़ अर्थात् निर्विप्लव हो जाने पर यद्यपि जीवन्मुक्ति का लाभ हो जाता है। फिर भी प्रारब्ध कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ता है। असम्प्रज्ञात योग की विशेषता यह है कि प्रारब्धकर्मों का भी क्षय असम्प्रज्ञात के द्वारा हो जाता है, क्योंकि असम्प्रज्ञात योग अखिल (कर्म) संस्कारों का दाहक होता है। यही

Scanned with CamScanner